International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(3): 232-234

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(3): 232-234
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-02-2024
Accepted: 17-03-2024

हिरवानी ठाकुर
पीएच. डी. शोधच्छात्र,
संस्कृत विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

डॉ. लता देवी
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

CorrespondingAuthor:
हिरवानी ठाकुर
पीएच. डी. शोधच्छात्र,
संस्कृत विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

दैव और पुरुषार्थ का विवेचनः मत्स्यपुराण के अनुसार

हिरवानी ठाकुर, डॉ. लता देवी

सारांश
भारतीय संस्कृति में मानव जीवन का ध्येय चतुवर्गों की फल प्राप्ति माना जाता है। अतः मानव हमेशा आंकाक्षाओं से परिपूर्ण रहता है। वह हमेशा अपने मनवांछित फल को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसके प्रयास कभी सफल होते हैं और कभी कठोर परिश्रम भी उसके कर्म को फल की परिणिति तक नहीं पहुचा पाता। ऐसी स्थिति में मानव जो फल प्राप्त करता है वह आशावादी होकर मेहतन को यथार्थ मानता है और जिसे विना परिश्रम से फल मिल जाता है वह भाग्य को सर्वस्व मान लेता है तथा जिसे कठोर परिश्रम भी फलदायी परिणाम नहीं देता वह अपनी नियति को ही कोसता है। अतः स्वभाविक रुप से मन में अन्तर्द्वन्द्व होता है कि क्या मेहतन ही फलदायी है ? या फिर सब कुछ पहले से ही नियत है ? इसी का विवेचन मत्स्य पुराण में दैव और पुरुषार्थ के वर्णन में किया गया है। मनु द्वारा मत्स्य भगवान से दैव एवं पुरुषार्थ के बारे में पूछे जाने पर मत्स्य भगवान ने दोनों का भेद बताकर पुरुषार्थ की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठापित करके मनुष्य को पुरुषार्थ के लिए प्रेरित किया है। ऐसे समय में जब अधिकांश मानव आलस्य से ओत–प्रोत होकर भाग्य के सहारे जीवन जीने को अपना परम सुख मानते हैं, तो यह विषय अपनी सार्थकता को सिद्ध करके उस पुरुषार्थविहीन समाज को पुरुषार्थ के मार्ग पर लाने में निश्चित ही उपयोगी होगा।

कूटशब्दः दैव, पुरुषार्थ, मत्स्यपुराण

प्रस्तावना
मनुष्य सदैव ही जीवन में कुछ न कुछ प्राप्त करने हेतु कर्मशील रहता है। वह यदि अपने प्रयत्न से सफलता प्राप्त करता है तो श्रेय अपने पुरुषार्थ को देता है और यदि असफलता का मुह देखना पड़ता है, तो अपने भाग्य को कोसता है। कोई कम पुरुषार्थ से ही फल प्राप्ति कर लेता है तथा कुछ अथक परिश्रम के पश्चात भी फल का स्वाद नहीं चख पाते। अतः मन में सवाल पैदा होना स्वभाविक है कि क्या केवल पुरुषार्थ से फल की प्राप्ति होती है ? या फल की प्राप्ति मात्र दैव अर्थात् भाग्याश्रित ही है ? दैव और पुरुषार्थ इन दोनों में से कौन श्रेष्ठ है ? मनुष्य को पुरुषार्थ प्रेमी होना चाहिए अथवा दैवाबलम्बी ? इन सभी शंकाओं अथवा प्रश्नों का निराकरण मत्स्य पुराण में दैव एवं पुरुषार्थ विवेचन में मिलता है।

दैव
दैव शब्द की उत्पत्ति शब्दकल्पद्रुम[1] में देव शब्द से अण् प्रत्यय करने पर बताई गई है, जिसका अर्थ है देवता का और भाग्य। अमरकोश[2] में दैव शब्द का भाग्य, नियति, विधि आदि अर्थो में उल्लेख है। हिन्दी संस्कृत शब्दकोश[3] में भी यही अर्थ बताया गया है। अग्नि पुरराणम में कहा गया है दूसरी देह में स्वयं कृत पुरुषार्थ ही दैव है।[4] मत्स्य पुराण भी मनुष्य द्वारा पूर्वजन्म में किए गए कर्मों फल को ही दैव मानता है–

स्वयमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम्।[5]

पुरुषार्थ
पुरुषार्थ शब्द दो शब्दों के मेल से बनता है, पुरुष और अर्थ। पुरुष शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है जैसे वेदों में पुरुष परमात्मा के रुप में, व्याकरण में क्रियापद के वाचक के रुप में जैसे प्रथम पुरुष इत्यादि रुपों में होता है। संस्कृत हिन्दी शब्दकोश[6] में इसका अर्थ पुरी देहे शेतेशी+ड, पुर+कुषन् से नर, नारी और मनुष्य अर्थ में किया गया है। यह शब्द प्राणि मात्र का द्योतक है।

अर्थ शब्द अर्थ्यते प्रार्थ्यते सर्वे इति अर्थः अर्थात् अभिलषित फल को अर्थ कहते हैं। इस प्रकार पुरुषैः अभ्यर्थ्यते इति पुरुषार्थः अर्थात् मनुष्य द्वारा फल की कामना ही पुरुषार्थ है।[7] धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहलाते हैं। इनमें से किसी न किसी एक की प्राप्ति हेतु मानव क्रियाशील रहता है। उसके पुरुषार्थ के फलस्वरुप उसे कभी फल की प्राप्ति होती है और कई बार नही भी होती। विना पुरुषार्थ के भी कई बार फल प्राप्ति संसार में देखी जाती है और कहा जाता है कि यह सब भाग्य की देन है। फल प्राप्ति के संदर्भ में वर्णित है कि –

येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम।
पौरुषेण विना केषांचिद् दृश्यते फलम्।।
कर्मणा प्राप्यते लोके राजस्य तथा फलम्।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम्।।[8]

यदि कम परिश्रम से ही फल प्राप्त हो जाए तो वह पूर्व जन्म के सात्विक कर्मों का फल है,इसी कारण से कई बार विना पुरुषार्थ के भी फल प्राप्ति संसार में दृष्टिगोचर होती है। कदाचित् सामान्य कर्म से फल प्राप्ति राजसिम गुणों का फल होता है और यदि कठिन पुरुषार्थ करके भी फल न मिले तो उसका कारण तमोगुणात्मक कर्म होते हैं। अतः हमें सात्विक कर्म ही करने चाहिए जिससे की पूर्वजन्म का दैव शीघ्र फलीभूत हो।
प्रश्न उठता है कि फल की प्राप्ति पुरुषार्थ मात्र से संभव है अथवा दैव मात्र से ? इस संदर्भ मे महाभारत में बताया गया है कि दैव की सिद्वि भी पुरुषार्थ के विना संभव है अतः दैव श्रेष्ठ है–

क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम्।
क्षेत्र बीजसमायोगात् ततः सस्यं समृद्धयते।।[9]

अर्थात् जिस प्रकार विना बीज के कुछ पैदा नहीं होता और न ही फल पैदा होता है,वैसे ही पुरुषार्थ के विना दैवयोग सिद्व नहीं होता। इसी प्रकार का विवरण याज्ञवल्क्य स्मृति में भी मिलता है–

यथा ह्यकेन चक्रेण विना रथस्य न गतिर्भवति।।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति।।[10]

अर्थात् जिस प्रकार रथ एक पहिए से चलायमान नहीं हो सकता वैसे ही केवल मात्र दैव भी अकेले फल देने बाला नहीं हो सकता। अतः दैव को पुरुषार्थ का संयोग अपेक्षित है। अतः पुरुषार्थ करना आवश्यक है। मत्स्य पुराण में भी वर्णित है कि क्योंकि दैव दूसरे शरीर में किए गए अपने कर्म से जनित है अतः श्रेष्ठ जन पुरुषार्थ को ही से श्रेष्ठ कहते हैं –

स्वयमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम्।
तस्मात् पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः।।[11]

इसी प्रकार का वर्णन अग्नि पुराण में भी मिलता है।[12] मत्स्य पुराण में पुरुषार्थ की महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि यदि मनुष्य का दैव प्रतिकूल भी हो तो पुरुषार्थ के द्वारा उसको नष्ट किया जा सकता है–

प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते।
मंगलाचरणयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम्।।[13]

पुरुषार्थ किस प्रकार का हो ? इसके लिए योगवाशिष्ठ में निर्दिष्ट है कि शास्त्रों के अनुसार किया हुआ पुरुषार्थ ही इच्छित फल की प्राप्ति का कारण होता है–

उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति द्विविधं पौरुषं स्मृतम्।
तत्रोच्छास्मनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्।।[14]

मत्स्य पुराण भी इसी के समकक्ष कहा गया है कि मनुष्य को धर्मयुक्त पौरुष को श्रेयकर मानना चाहिए–

तस्मादेव कर्त्तव्यं सधर्म पौरुषं नरे।[15]

योगवाशिष्ठ में एक स्थान पर कहा गया है कि यदि मनुष्य दैव के फल को शीघ्रता से प्राप्त करना चाहता है तो उसे पुरुषार्थ करना चाहिए–

अतः पुरुषयत्नेन यतितव्यं यथा तथा।
पुंसा पुरुषयत्नेन अश्वपतनो जयेत्।।[16]

उपर्युक्त कथनों के अनुसार यदि दैव के संयोग से ही पुरुषार्थ फल प्राप्ति में इतना प्रबल है तो पुरुषार्थ का क्या औचित्य ? इस संदर्भ में मत्स्य पुराण में कहा गया है कि मनुष्य पुरुषार्थ के बल पर ही दैव के संयोग से ही फल प्राप्त करता है–

पौरुषेणाप्यते राजन् प्राथितव्यं फलं नरैः।
दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषवर्जिताः।।
तस्मात् त्रिकालं संयुक्तं दैवं तु सफलं भवेत्।
पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति पार्थिव।।
दैवं पुरुषकार च कालष्च पुरुषोत्तम।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम्।।[17]

अर्थात् तीनों कालों में पुरुषार्थ से युक्त दैव ही फलदायक है। इन दोनों का संयोग समय आने पर फल की प्राप्ति करवाता है। इसी बात को एक उदाहरण द्वारा समझाया गया है–

ंकृषेर्वृष्टिसमायोगाद् दृश्यते फलसिद्धयः।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथयचन।।[18]

जिस प्रकार कृषि और वृष्टि इन दोनों के मेल से फल प्राप्त होता है,परन्तु वह भी समय आने पर ही। वैसे ही दैव और पुरुषार्थ समय आने पर ही फलप्रदायी होते हैं। अर्थात् दैव, पुरुषार्थ और काल यह तीनों ही मिलकर मनुष्य को फल प्रदान करते हैं। अग्निपुराण में भी दैव, पुरुषार्थ के संयोग से समय आने पर फल की प्राप्ति बताई गई है।[19] मत्स्य पुराण में पुरुषार्थ को इहलौकिक और पारलौकिक फलप्रदान करने वाला बताया गया है। इस संदर्भ में कहा गया है कि पुरुषार्थ के कारण इस लोक में यदि फल न मिले, तो उसी पुरुषार्थ के फलस्वरुप परलोक में फल की प्राप्ति अवश्य होगी। अतः मनुष्य को धर्मानुसार पुरुषार्थ का सम्पादन करना चाहिए–

तस्मात् सदैव कर्तव्यं सधर्म पौरुषं नरैः।
विपत्तावपि यस्देह परलोके ध्रुवं फलम्।।[20]

मत्स्य पुराण में पुरुषार्थ को महत्त्व देते हुए कहा गया है कि मनुष्य को आलस त्यागकर पुरुषार्थ करने पर बल दिया गया है–

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न च दैवपरायणाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पौरुषें यत्नमाचरेत्।।
त्यक्त्वा आलसान् देवपरान् मनुष्या–
नुत्थानयुक्तान पुरुषान् हि लक्ष्मी।।[21]

अर्थात् आलसी एवं भाग्य पर आ़श्रित रहने बाला व्यक्ति फल प्राप्ति नहीं कर सकता। लक्ष्मी भी उसी का वरण करती है जो पुरुषार्थी हो और आलसी व्यक्ति का त्याग करती है। यही बात

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीस्थो महान् रिपुः।
नास्ति उद्यमसमो बन्धुः यं कृत्वा नावसीदति।।[22]

निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि पुरुषार्थ ही मनुष्य को फल प्राप्ति करवाता है। पुरुषार्थ ही दैव का जनक है तथा इसी पुरुषार्थ से जनित दैव काल के संयोग से मनुष्य को फल की प्रदान करता है। अतः मनुष्य को हमेशा शास्त्रोचित पुरुषार्थ करते हुए जीवन जीना चाहिए और हमेशा पुरुषार्थ को महत्व देना चाहिए। गीता भी इसी भावना की पोषक है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुभू असंगस्ते अकर्मणा।[23]

जीवन में अर्कण्यता न लाएं। हमेशा कर्मशील रहे,उससे जनित फल की चिन्ता को त्यागें।
अतः प्रत्येक मनुष्य को पुरुषार्थी होकर इह लोक एवं पारलौकिक जीवन को फलवान बनाने हेतु कर्मशील रहना चाहिए। भाग्य के उपर निर्भर होकर अकर्मण्यता का मार्ग नहीं अपनाना चाहिए। पुरुषार्थ ही मनुष्य को उसके पूर्व जन्म के पुरुषार्थ से जनित दैव को फलिभूत करके मानव की कामना को परिपूर्ण करता है। इसलिए दैव और पुरुषार्थ इन दोनों में से पुरुषार्थ की श्रेयकर है।

संदर्भ सूची

1. शब्दकल्पद्रुम,4 / 3 / 124
2. अमरकोश, 1 / 1 / 28
3. हिन्दी संस्कृत शब्दकोश, वामन शिवराज आप्टे, पृ0 सं0, 476
4. स्वयमेव कर्मदैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम्। अग्नि पुराण, 226 / 1
5. मत्स्य पुराण, 221 / 1
6. हिन्दी संस्कृत शब्दकोश, वामन शिवराज आप्टे, पृ0 सं0, 624
7. पुरुषार्थ–चतुष्टय, प्रेम वल्लभ त्रिपाठी, प्रकाशन : राजविद्या–ग्रन्थमाला वाराणसी, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0, 5
8. मत्स्य पुराण, 221 / 4–5
9. महाभारत, अनुशासन पर्व, 6 / 8
10. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 / 351
11. मत्स्य पुराण, 221 / 1
12. तस्मात् पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनिषिणः। अग्नि पुराण, 226 / 1
13. मत्स्यपुराण, 221 / 3
14. योग वाशिष्ठ, मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण, 5 / 4
15. मत्स्य पुराण, 221 / 10
16. योग वाशिष्ठ, मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण, 5 / 4
17. मत्स्य पुराण, 221 / 6–8
18. वही, 221 / 9
19. कृषेवृष्टिसमायोगात् काले स्युः फलसिद्धयः। अग्नि पुराण, 226 / 4
20. मत्स्यपुराण, 221 / 10,
21. वही, 221 / 11–12
22. नीतिशतकम्, 86
23. श्रीमद्भगवद्गीता, 3 / 36